मुझे धूप चाहिए

गिरिजा कुलश्रेष्ठ
चित्रांकनः सौम्या शुक्ला

एकलव्य का प्रकाशन

मुझे धूप चाहिए

MUJHE DHOOP CHAHIYE

लेखिका: गिरिजा कुलश्रेष्ठ
चित्रांकन: सौम्या शुक्ला

पहला संस्करण: फरवरी 2013/3000 प्रतियाँ
कहानियाँ © गिरिजा कुलश्रेष्ठ
कागज़: 70 gsm नेचुरल शेड व 220 gsm पेपर बोर्ड (कवर)
पराग इनिशिएटिव, सर रतन टाटा ट्रस्ट व नवजबाई रतन टाटा ट्रस्ट के वित्तीय सहयोग से विकसित

ISBN: 978-93-81300-62-6
मूल्य: ₹ 25.00

प्रकाशक: **एकलव्य**
ई-10, शंकर नगर बी.डी.ए. कॉलोनी,
शिवाजी नगर, भोपाल - 462 016 (म.प्र.)
फोन: 0755 - 255 0976, 267 1017
www.eklavya.in / books@eklavya.in

मुद्रक: भंडारी ऑफसेट प्रिंटर्स, भोपाल, फोन 0755-243769

इस किताब में उपयोग किया गया 100 gsm कागज़ नवीकरणीय बागनों से प्राप्त लकड़ी से बना है।

कौन कहाँ

1. पूसी की वापसी 5

2. इन्तज़ार 10

3. लड़ाकू 14

4. मुझे धूप चाहिए 17

5. मीकू फँसा पिंजरे में 22

6. कुट्टू कहाँ गया 26

7. माँ 30

8. भैया का दोस्त 34

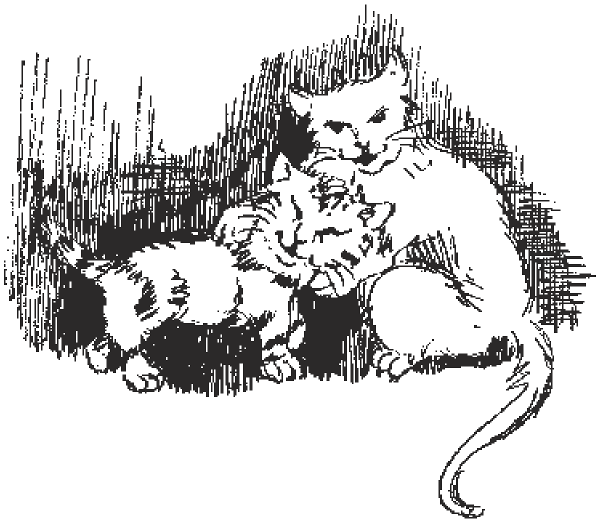

कुछ बातें...

कहानियाँ - यानी शब्दों के ताने-बाने में बुनी भावनाएँ और संवेदनाएँ। ऐसी संवेदनाएँ जिनके कारण पढ़ने वाले को कहानियाँ अपनी-सी लगती हैं। ऐसा लगता है कि यह तो मेरी ही कहानी है, या लगता है कि अरे... यह तो मैंने भी देखा है पर समझ नहीं पाई।

इस संग्रह की आठों कहानियाँ अलग-अलग तरह से रिश्तों के धागों को खोलती हैं। मसलन, 'पूसी की वापसी' और 'कुट्टू कहाँ गया' कहानियों में सन्तान के प्रति प्रेम के रिश्ते को दर्शाया गया है। 'मीकू फँसा पिंजरे' में दोस्ती का खूबसूरत एहसास कराती है और परिवार की चिन्ता भी। माँ कहानी में द्वन्द्व है और उससे बाहर निकलने का सुकून भी है। 'मुझे धूप चाहिए' में तेज़ी से बड़े होने की वैसी ही ललक दिखाई देती जो हर बड़े होते बच्चे और युवावस्था की तरफ बढ़ते किशोर में नज़र आती है।

कहानियों में खास यह भी है कि इनमें जुड़ाव है – चाहे वह पात्रों के बीच का हो, प्रकृति के साथ हो या इन्सान और जानवर के रिश्ते की ही बात हो। परिवेश भी ऐसा है जो कहानियों को जीवन्त बनाता है। कहीं भी कृत्रिमता नहीं।

उम्र के इस दौर में बचपन के जाने और युवावस्था के आने के बीच हम खुद अपने तथा चहुँओर की चीज़ों, जैसे परिवार, दोस्त, जानवर आदि के प्रति अपने अन्दर की भावनाओं और संवेदनशीलता को एक नए अन्दाज़ में परिभाषित होते देखते और महसूस भी करते हैं। इस उथल-पुथल केदौर में ऐसी कहानियाँ दिल को छू जाती हैं जो हमारी दुनिया को हमारे दृष्टिकोण से सामने रखें।

तो पढ़िए गिरिजा कुलश्रेष्ठ की ऐसी ही कुछ कहानियाँ और कीजिए सैर एक अनोखी दुनिया की जिसमें हर तरह के अनुभव जीवित होंगे।

एकलव्य

पूसी की वापसी

"म्आऽऽऽ ऊँऽऽऽ... म्आऽऽऽ ऊऽऽऽ..."

पूसी ने कुछ बेचैन होकर अपने बच्चे को पुकारा जो अभी डेढ़ माह का ही था लेकिन माँ के पास रहने की बजाय बाहर मस्ती करने में ज़्यादा रुचि लेने लगा था। पूसी अकेली बैठी ऊब रही थी और काफी देर से उसे बुला रही थी। माँ बनने के बाद उसे किसी पर भरोसा नहीं था और ज़्यादा देर तक बच्चे को अपने से दूर नहीं रख सकती थी।

पूसी का सन्देह बेबुनियाद नहीं था। बच्चों के जन्म के बाद ही लोगों ने उसके व बच्चों के बीच दखल देना शुरू कर दिया था। वह बच्चों को जन्म देने से पहले एक कच्चे घर के अँधेरे-से कोने में आ गई थी। शायद उस घर के लोगों को पता था कि पूसी माँ बनने वाली है।

"घर में बिल्ली का प्रसव होना शुभ होता है," एक बूढ़ी औरत कह रही थी। यही नहीं, उसके लिए दूध भी रखा गया था। लेकिन बच्चों के जन्म के बाद पूसी को किसी पर भरोसा नहीं रहा।

जब घर के बच्चे बार-बार उसके नन्हे-मुन्नों को देखने आते तब पूसी नाराज़ होकर गुर्राने लगती थी। लेकिन बच्चे क्या मानते! चींटी की कतार की तरह वे पूसी और बच्चों को देखने आने लगे। नन्हे बच्चों को उठा-उठाकर देखने लगे, "अरे एक की तो आँखें भी नहीं खुलीं! यह बच्चा तो बड़ा मस्त है, ज़्यादा दूध पीता होगा और इसकी आँखें पूसी की तरह पीली नहीं, नीली हैं। कंचे जैसी खूबसूरत।"

पूसी ने यह सब किसी तरह बर्दाश्त कर लिया क्योंकि वह खुद बचपन से इसी घर में दूध पीकर बड़ी हुई है। सबका खूब प्यार भी मिला है। पर अब बात उसके नन्हे बच्चों की थी। उनमें भी दो बच्चे पता नहीं कब, कैसे, कहाँ चले गए? बाकी रह गए एक बच्चे पर ही पूसी अपना प्यार लुटाने लगी थी।

अपने इकलौते बेटे को पूसी बड़ी लय और मिठास के साथ पुकारती थी। स्वर को खूब लम्बा खींचकर – "*म्आऽऽऽ ऊऽऽऽ...* ।" सो घर के तमाम बच्चे भी उसे "माऊ" कहकर बुलाने लगे।

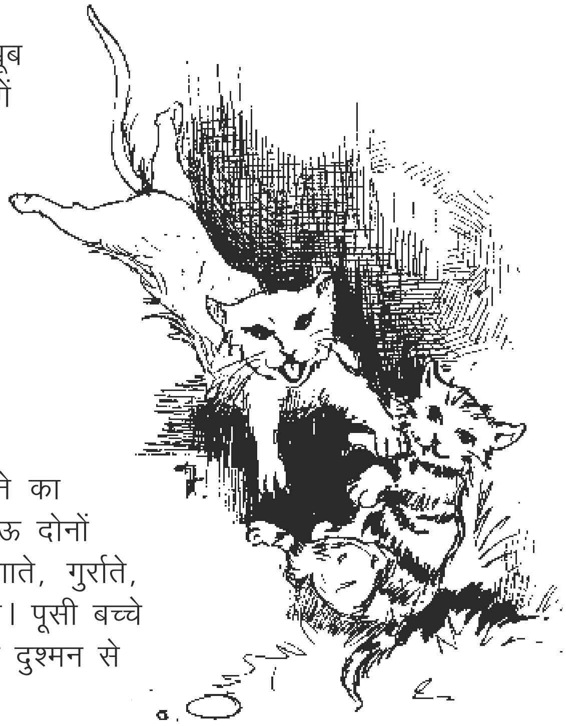

"माऊ" अपने नाम को खूब पहचानता था और सुनकर छलाँगें लगाता था। वह घर के सभी लोगों से घुल-मिल गया था। रात में माँ को छोड़कर गुल्लू या गुल्लू की नानी की रज़ाई में घुसकर आराम से सो जाता था। पूसी को लगता कि ज़रूर ये लोग उसके बच्चे को छीनना चाहते हैं।

सुबह-शाम माऊ के खेलने का समय होता था। पूसी और माऊ दोनों आँगन में दौड़ते, छलाँगें लगाते, गुर्राते, लड़ने-झगड़ने का नाटक करते। पूसी बच्चे को शिकार पर हमला करने व दुश्मन से

बचाव करने के दाँव-पेंच सिखाती। पहले वह माऊ को झपट्टा मारकर दबा लेती, फिर पेट और गर्दन पर दाँत गड़ाने का अभिनय करती। माऊ हल्के से चीखता, छूटने की कोशिश करता। तभी मिनी चिल्लाती, "अरे, पूसी अपने बच्चे को मार डालेगी। नानी कहती है कि भूखी बिल्ली अपने बच्चे को खा जाती है।"

माऊ इस चीख-पुकार का लाभ उठाकर छूट जाता।

पूसी सोचती थी कि ये बच्चे माऊ को कभी कुछ सीखने नहीं देंगे। फिर वह निष्क्रिय लेट जाती और पूँछ के सिरे को हिला-हिलाकर माऊ को हमला करने का संकेत देती। माऊ पहले तो बुद्धू बना-सा देखता रहता, फिर अचानक हिलती हुई पूँछ पर झपटता। कभी दूर जाकर तिरछा चलता हुआ, पूँछ फुलाकर अकड़ता हुआ आता। पीठ बीच में ऊँट की तरह उठ जाती। फिर दबे पाँव आकर माँ के ऊपर हमला कर देता। पूसी बेटे की चतुराई पर खुश हो जाती।

लेकिन उसकी खुशी अधूरी रह जाती जब गुल्लू आँगन में प्लास्टिक का बिच्छू या छिपकली डाल देता और माऊ माँ को छोड़कर नकली बिच्छू पर अपने दाँव-पेंच आज़माता। उसे चीर-फाड़ने की पुरज़ोर कोशिश करता।

"इतना बेवकूफ होना अच्छा नहीं है।" पूसी बच्चे को समझाती।

"बेवकूफ क्यों?" माऊ भोलेपन से माँ को देखता, "मैं तो यूँ ही खेल रहा था। गुल्लू मेरा दोस्त है।"

"हूँ...," पूसी गुर्राती "दोस्त और दुश्मन की पहचान तुझे अभी कहाँ है मेरे बच्चे! तेरा एक दोस्त टॉमी भी है... चाहे जब तुझे अपने पास बुला लेता है। खाने में शामिल कर लेता है। क्या तू जानता है बच्चे कि वह तेरा सबसे बड़ा दुश्मन है?"

माऊ चुपचाप माँ की नसीहतें सुन लेता। दुश्मन क्या होता है वह नहीं जानता। वह इतना जानता है कि घर के सभी लोग उसे प्यार करते हैं। वे दुश्मन नहीं हो सकते और यही सोचकर माऊ बेखौफ होकर खूब शरारतें किया करता। कभी मिनी की फ्रॉक खींचकर उसे जगा या डरा देता, कभी गुल्लू की नानी की साड़ी को उलझाकर तार से नीचे गिरा लेता। कभी उनके पैरों में अड़कर उन्हें चलने से रोकता तो कभी गुल्लू को पंजे मार-मारकर छेड़ता। माऊ खूब जानता था कि पंजा मारते समय नाखूनों का

उपयोग केवल गुस्से में या फिर दुश्मन के लिए किया जाता है। वह यह भी जानने लगा था कि सब लोग उसके पंजा मारने पर पीड़ा से नहीं बल्कि

कभी गुल्लू के साथ, कभी नानी के, तो कभी टॉमी के साथ खाने में शामिल हो जाता था। माँ की हर बात में शक करने की आदत अच्छी थोड़े ही है? आज़ादी पाकर माऊ खुश था।

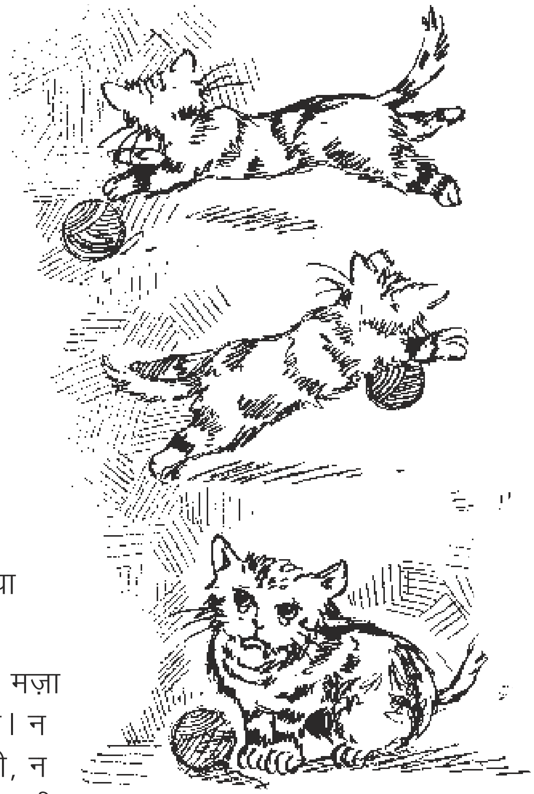

लेकिन शाम होते-होते माऊ को कुछ खाली-खाली-सा लगने लगा। उसे लगा कि वह जी भरकर खेल चुका है, जी भरकर खा-पी चुका है और जी भरकर ऊधमबाजी कर चुका है। करने को कुछ भी नहीं बचा। अब करे तो क्या करे?

अब न उसे मिनी को डराने में मज़ा आ रहा था, न नानी को छकाने में। न अब गुल्लू की छेड़छाड़ में जान थी, न टॉमी की बातों में। वह उदास-सा कभी अन्दर आए तो कभी बाहर जाए। "इसे शायद माँ की याद आ रही है... अभी छोटा ही तो है," नानी बोली।

माऊ को लगा कि सचमुच वह अभी छोटा है। उसे माँ की ज़रूरत है। माँ को उसे छोड़कर नहीं जाना चाहिए था। लेकिन उसने भी तो माँ को जाने दिया था चुपचाप। अब उसे बस माँ चाहिए सिर्फ माँ। "माँऽऽ" वह बेचैनी से चिल्लाया। उसे लगा कि माँ यहाँ से नहीं सुन सकती इसलिए छत पर चढ़कर चिल्लाया, "माँऽऽ।"

"माऊऽऽऽ...मेरे बच्चे...," कहीं से पूसी भी चिल्लाई। "मैं आ रही हूँ... मैं जानती थी कि मेरा बच्चा मुझे याद करेगा। उसे अभी मेरी ज़रूरत है," पूसी ने माऊ के पास आते-आते बड़े प्यार से सोचा।

"आओ, नीचे चलें, गुल्लू के पास," पूसी ने बच्चे को प्यार करते हुए कहा। माऊ ने हैरान होकर माँ की ओर देखा। "हाँ, हमें सचमुच कहीं और

जाने की ज़रूरत नहीं। यहाँ यह सब लोग हमारा खयाल रखते हैं," पूसी बोली। अब पूसी और उसका बच्चा पहले से ज़्यादा खुश थे।

इन्तज़ार

“अम्माहाँऽऽऽ...,” गबरू चिल्लाता है।

आठ दिन का गबरू। मुलायम, सफेद, रोएँदार, नाज़ुक शरीर! काली-काली भोली आँखें, बहुत ही चंचल। ज़रा खूँटे से छूटा कि चौकड़ियाँ भरने लगता है। इस समय गबरू उदास खड़ा है। जैसे ही कोई बात याद आती है अचानक रम्भाने लगता है।

सुबह ही उसे माँ का दूध पीने को मिला था। भरपेट पीने भी कहाँ दिया था। दूध की धार ज़रा ही तेज़ जाने लगी थी कि रस्सी खींच ली गई। बाद में दूध निकाल लेने के बाद छोड़ा गया तब रखा ही क्या था! माँ के साथ थोड़ा खेल भी न पाया था कि माँ को छोड़ दिया गया। माँ चली गई। अब शाम के धुँधलके में लौटेगी तब तक गबरू क्या करे? वह मुँह उठाकर चिल्लाता है, “अम्माहाँऽऽऽ...।”

सरूप जैसे ही गबरू की रस्सी खोलता है, वह हाथ से छूटता-सा आँगन में चौकड़ियाँ भरता है। सरूप पीछे दौड़ता है।

“ठण्ड लग रही थी मेरे बिटुआ को।” अम्मा उसका मुँह हाथ से सहलाती हुई नाक से सटाकर दुलारती है। गबरू को यह अच्छा लगता है। कोई उससे बतियाए, उसकी पीठ और गर्दन सहलाए, उसे अच्छा लगता है। मनके जैसी आँखों को इधर-उधर ढुलकाएगा, कान हिलाएगा, कन्धे पर अपना मुँह टिका देगा, जैसे सब समझ रहा है।

छुन्नू हुलसकर कहता है, “अम्मा, तुमने गबलू को काजल लगाया है न?”

“नहीं तो।”

“वाह, लगाया कैछे नहीं है। देखो तो इछकी आँखें कितनी छुन्दल हैं काली-काली...।”

“नटखट,” अम्मा हँसकर छुन्नू के गाल पर चपत लगाती है।

“यहीं गबरू के पास खेलना।”

छुन्नू गबरू के पास बैठा उसके कान, मुँह, पैर छूकर देखता है, उसकी पीठ सहलाता है। उससे बात करता है। फिर थोड़ी देर बाद चला जाता है। गबरू फिर अकेला रह जाता है। अब वह क्या करे? शाम न जाने कब होगी? माँ कब आएगी? वह कुछ देर इधर-उधर देखता है, फिर नरम-सी धूप में उसका मन सोने को होता है। पैरों को आहिस्ता से मोड़कर बैठ जाता है। मुँह घुटनों पर रखकर सो जाता है। बीच-बीच में किसी आहट या मक्खी के कारण कान हिलाता है, आँखें खोलता है।

थोड़ी देर बाद ही उसे लगता है कि वह बहुत सो लिया, शायद माँ आने वाली होगी। वह अचकचाकर खड़ा हो जाता है, "अम्माहाँऽऽऽ..."

"अम्मा। देखो गबलू फिल चिल्लाया।"

"अब उसे धूप लग रही होगी। ला भीतर बाँध देती हूँ," अम्मा उसे अन्दर लाकर बाँध देती है। उसे पानी पिलाती है। गबरू को पानी अच्छा नहीं लगता। वह माँ का दूध पीना चाहता है। पर दिन है कि ढलता ही नहीं। वह फिर रम्भाता है, "अम्माहाँऽऽऽ..."

"अब क्या है?" अम्मा फिर उसे दुलारती है और थोड़ी देर उसे खुला छोड़ देती है। आज़ादी पाकर वह थोड़ा खुश होता है। आँगन में, द्वार पर, गली में चौकड़ी भरता है। कोई चीज़ दिखती है, उसे सूँघता है। फिर अचानक उछलता है।

लेकिन थोड़ी ही देर में गबरू फिर ऊब जाता है। अब क्या करे? समय रत्ती-रत्ती सरक रहा है। कब शाम होगी? माँ कब आएगी? कब दूध पीने को मिलेगा? वह थककर हारा हुआ-सा बैठ जाता है।

अभी थोड़ी देर पहले छुन्नू महाशय अपनी मित्रमण्डली को लेकर आए थे। अपने गबरू को दिखाने। बच्चे बड़े कौतूहल से उस नन्हे बछड़े को देखते रहे। कान कैसे मुलायम हैं, पूँछ तो अभी छोटी है। सींग अभी नहीं हैं, यहाँ उगेंगे कानों के ऊपर... आहा, माथे पर लाल चन्दक कैसा सुन्दर है?

"अच्छा है न हमाला गबलू?"

"हाँ, बहुत अच्छा है... बहुत ही प्यारा...," सब बच्चे बोले। पर गबरू को यह सब ज़रा नहीं सुहाता। कभी कान पकड़ेंगे तो कभी पूँछ तो कभी मुँह खोलेंगे। वह उठ खड़ा होता है। भागना चाहता है पर पैर रस्सी में उलझ जाता है।

"अम्माहाँऽऽऽ..."

"अरे राम।" अम्मा आकर सारे बच्चों को डाँटती है, "क्यों तंग करते हो उसे... दूर से ही देखो। बेटा, वह अभी छोटा है। डरता है न।..." अम्मा उसकी पीठ सहलाती है। वह अम्मा के कन्धे पर मुँह टिका देता है मानो शिकायत कर रहा हो, "और कब तक इन्तज़ार करना होगा? आखिर माँ कब आएगी?"

और गबरू के इन्तज़ार में धीरे-धीरे दिन ढलने लगा, सूरज पहाड़ी के पीछे सरकने लगा। आकाश में चिड़िया और कौवे उड़ते आ रहे थे। मुण्डेर पर बैठी चिड़िया की तरह धूप भी जैसे कहीं उड़ गई। खेतों से लौटते हुए बैलों की घण्टियाँ बजने लगीं।

गबरू को विश्वास हो चला है कि अब माँ ज़रूर आ रही है। वह रस्सी को झटका देते हुए कई बार रम्भाता है, "अम्माहाँऽऽऽ..."

"वो देखो हमाली गैया आ गई। कितनी जल्दी-जल्दी आ लही है?" छुन्नू सूचना देता है।

गाय दूर से ही रम्भाती है। गबरू माँ की नकल करता है, "अम्माहाँऽऽऽ..."

"सरूप, गबरू को खोल दे। मैं दूध का बरतन लाती हूँ।"

सरूप जैसे ही गबरू को खोलता है, गबरू उत्साह और वेग से उछलता हुआ माँ की ओर दौड़ता है। गाय हूकती है। वह उतावला-सा लपककर पेट के नीचे पिछली टाँगों में मुँह देता है। हड़बड़ाहट में उसे पहले तो थन मिलते ही नहीं, फिर ढूँढकर दूध पीने लगता है। पूँछ हिला-हिलाकर... मुँह उछाल-उछालकर। गाय उसकी पीठ चाटती है। छुन्नू ताली बजाता है।

लड़ाकू

उस दिन सुबह से ही तिनकू का मिज़ाज बिगड़ा हुआ था। रोज़ की तरह न उसने अपने मालिक की सीटी का जवाब दिया, न मिन्नी से कोई बात की। कटोरी में रखे काजू के टुकड़े भी उसने खाए नहीं। पिंजरे में बिखरा दिए और गर्दन फुलाए चुपचाप दूर मैदान में देखता रहा।

तिनकू एक लड़ाकू और बहादुर तीतर था। तीतरों की लड़ाइयों में उसने कई बार शानदार जीत हासिल की थी। जब वह ज़मीन से दो-दो फीट उछलकर अपने विरोधी पर वार करता था तो उसकी फुर्ती और जोश देखते ही बनता था।

मिन्नी उसकी हमउम्र दोस्त थी जो उसी पिंजरे के दूसरे हिस्से में रहती थी। दोनों के बीच एक जालीदार दीवार थी, पर वे एक-दूसरे का हाल-चाल बखूबी पूछ सकते थे। मिन्नी लड़ाई के समय तिनकू का उत्साह बढ़ाती थी, चीख-चीखकर उसका जोश बनाए रखती थी।

इन दोनों को मनोरी तभी ले आया था जब ये ठीक से उड़ना भी नहीं सीखे थे। मनोरी एक नामी तीतरबाज़ था। तीतरों को पालना, उन्हें लड़ाई के लिए प्रशिक्षित करवाना उसका शौक ही नहीं धन्धा भी था। अपने बच्चों के लिए भले ही वह रूखा-सूखा भोजन जुटा पाता था पर तीतरों को काजू-बादाम चुगाता था। यही कारण था कि तिनकू भी बहुत जल्दी बड़ा और सेहतमन्द हो गया था।

मनोरी अपने इस तीतर को बहुत चाहता था क्योंकि इसने कई मुकाबले जीतकर अपने मालिक को अच्छी-खासी रकम भी दिलवाई थी

और नाम भी। कहीं भी तीतरों का मुकाबला होता, मनोरी को ज़रूर बुलवाया जाता था।

"आज इसे क्या हो गया?" मनोरी सोच रहा था क्योंकि तिनकू मालिक की सीटी का जवाब नहीं दे रहा था। चाहे मनोरी दस बार सीटी बजाता, वह दस बार ही उसी लय के साथ चहककर बोल उठता था। मनोरी की चिन्ता का कारण यह भी था कि उसी दिन तीतरों का बड़ा मुकाबला होने वाला था जिसे जीतने की उसकी बड़ी लालसा थी। तिनकू के तेवर देखकर वह हैरान भी था और परेशान भी।

"ऐसा बरताव तो मैंने कभी नहीं देखा तुम्हारा," मिन्नी भी अपने दोस्त की नाराज़गी का कारण जानने के लिए बेचैन थी। वास्तव में उसे मनोरी का भी खयाल था। जिसने उन्हें अपने बच्चों की तरह पाला था। इसे वह हमेशा याद रखती थी और चाहती थी कि वह हर मुकाबला जीते।

"पर अब तुम्हें यही बरताव देखना होगा," तिनकू ने बेमन से जवाब दिया। "क्योंकि अब मैं अपनी मर्ज़ी से रहना पसन्द करूँगा।" मिन्नी ने हैरानी के साथ तिनकू की बातें सुनीं। वह खोया हुआ-सा कह रहा था, "यह बेवजह की लड़ाई... बिना दुश्मनी के ही टकराना... लहूलुहान करना और होना... पिंजरे में बन्द रहकर दूसरों के इशारों पर चलना... क्या यह सब ज़्यादती नहीं है?"

"पर ये मुकाबले तो न दुश्मनी के होते हैं न किसी दबाव के," मिन्नी ने उसे समझाते हुए कहा। "दुनिया में मुक्केबाज़ी, तलवारबाज़ी, कुश्ती आदि कितने ही खेल इसी तरह के होते हैं... किसी भी खिलाड़ी के लिए अपनी

ताकत और महारत दिखाने का अच्छा मौका भी।"

"फिलहाल मुझसे मुकाबलों की बात न करो तो अच्छा है," तिनकू ने नाराज़गी से कहा तो मिन्नी चुप हो गई।

"कोई बात नहीं, आज हम मुकाबले को केवल देखने के लिए बाड़े में जाएँगे," मनोरी ने कहा।

बल्लू का बाड़ा तीतरों की लड़ाई का बढ़िया अखाड़ा था। उस दिन भी वह दर्शकों से ठसाठस भरा था। मनोरी मुकाबले में भाग नहीं ले रहा, यह जानकर दूसरे तीतरबाज़ों ने राहत की साँस ली क्योंकि अब उनकी जीत की उम्मीद बढ़ गई थी। एक ने तो यह भी कह दिया कि मनोरी लड़ाई में भाग लेता तो भी उसे हारना ही पड़ता क्योंकि उसके तीतर में अब वैसी बात है ही नहीं।

यह सुनकर मनोरी तो कुछ नहीं बोला पर तिनकू के पंजों में हलचल-सी मच गई। बेचैनी से उसने पंख फड़फड़ाए। पिंजरे की तली में पंजे रगड़े।

तभी रेफरी की सीटी बजी और दो तीतर मैदान में उतारे गए। उनका जोश बढ़ाने के लिए उनके मालिक सीटियाँ बजाने लगे, हाँक लगाने लगे। कुछ रूमाल हिला-हिलाकर उन्हें उकसाने लगे और वे उछल-उछलकर एक-दूसरे पर चोंच से वार करने लगे। अब तिनकू को पिंजरे में चुप बैठना मुश्किल लगने लगा ओर वह ज़ोर-ज़ोर से चीखकर बाहर निकलने के लिए बेचैन होने लगा।

"यह क्या! तुम मुकाबले के लिए तैयार हो?" मिन्नी खुशी से चीखी।

"तब तुम ही जीतोगे तिनकू।" मनोरी मानो अपने तीतरों की भाषा समझ गया और खड़ा होकर चिल्लाया, "अब मेरा जवान भी तैयार है मुकाबले के लिए।"

पिंजरे से बाहर आकर तिनकू जिन तेवरों के साथ अपने विरोधी पर झपट पड़ा था, देखकर कोई भी कह सकता था कि जीत उसी की होगी।

एक था छोटा-सा बीज। गोल-मटोल, काला-कलूटा और बहुत कुछ काली मिर्च जैसा था वह छोटा-सा बीज। यदि तुम्हें बीजों के विषय में थोड़ी बहुत जानकारी है तो मुझे बताने की ज़रूरत नहीं कि वह पपीते का बीज था। फल खाने के बाद फेंके गए बीजों में से अलग हुआ वह बीज अनचाहे ही एक छोटी क्यारी में जा गिरा था।

'अनचाहे' मैंने इसलिए कहा क्योंकि उस क्यारी में कोई भी पौधा बढ़कर पेड़ बनेगा, यह न किसी को अनुमान था न ही उम्मीद। इसकी वजह थी कि उस क्यारी में पहले से ही कई पेड़-पौधे थे और सब बढ़ने की कोशिश में लगे थे।

इनमें एक नींबू का छोटा पेड़ था। उसने बेसब्र बच्चे की तरह, जो हर हाल में ज़्यादा से ज़्यादा पाने की फिक्र में रहता है, अपनी टहनियाँ चारों

ओर फैला रखी थीं। लेकिन अब वह अंगूर की बेल से परेशान था जिसने अपने कोमल तन्तुओं से पहले तो ज़रा-सा सहारा माँगा था, पर अब हर टहनी पर कब्ज़ा जमा रही थी।

पास ही एक सन्तरे का पौधा था जिसके हौसले तो अमरूद के बराबर ऊँचे होने के थे, पर महीनों से वह जैसा का तैसा खड़ा था। उधर अमरूद के पास ही एक आम का पौधा बढ़ रहा था जो जगह न मिलने के कारण एक भी टहनी निकाले बिना सीधा बढ़ रहा था, खजूर की तरह। उसी क्यारी में लौकी की बेल ने गुलाब के पौधों को बातों में उलझाकर बढ़ने से रोक रखा था।

कुल मिलाकर क्यारी में शहर की व्यस्त सड़क पर 'ट्रैफिक जाम' जैसी दशा थी जिसमें सब आगे निकलना चाहते हैं पर कोई भी आसानी से और जल्दी नहीं निकल पाता। खैर... मैंने बात शुरू की थी पपीते के एक बीज से, जो ज़मीन के अन्दर की नमी और गरमाहट पाकर, मिट्टी की परत फोड़कर ऊपर आ गया था पूरा पेड़ बनने का सपना लेकर। धूप और हवा की जगमगाती कल्पना के साथ।

लेकिन ऊपर आकर उसने कल्पना के विपरीत अपने आपको पेड़-पौधों के घने झुरमुटों के बीच पाया। भीड़ में फँसे बिलकुल छोटे बच्चे की तरह। न खुली हवा, न पत्ते फैलाने के लिए जगह और ज़्यादा बुरी बात यह कि धूप का एक टुकड़ा भी नसीब नहीं था।

"लेकिन धूप तो मेरे लिए बहुत ज़रूरी है।" सुनहरी कुनकुनी धूप को वह पत्तों में समेटना चाहता था।

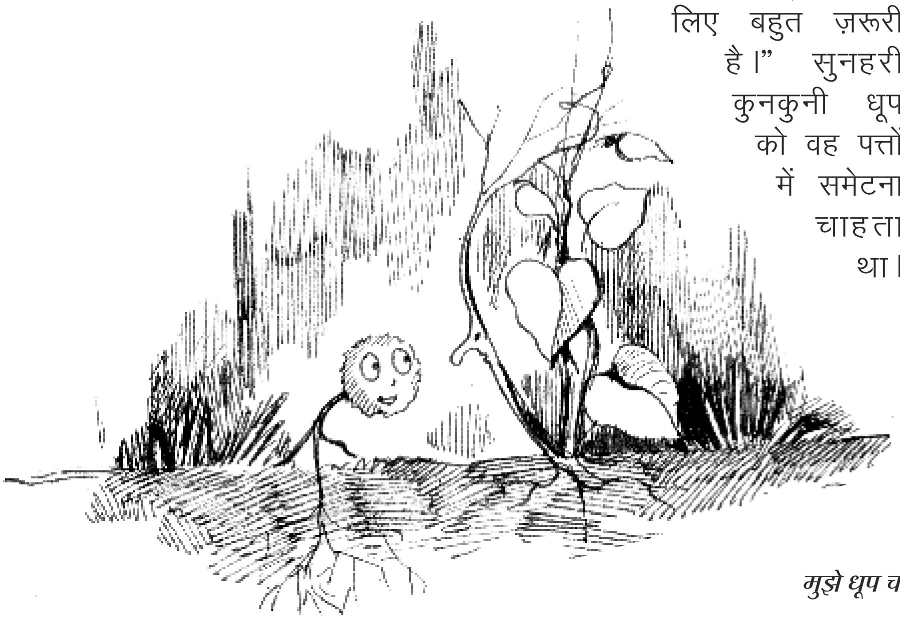

उसने ऊपर नींबू के पत्तों को देखा जो थोड़ी-सी धूप में मुस्कुराते हुए चमक रहे थे।

"ज़रा-सी धूप मुझे भी दो ना," उस नन्हे पौधे ने नींबू के पेड़ से कहा पर नींबू के पेड़ ने जैसे उसकी बात सुनी ही नहीं। उसने अंगूर की बेल को भी सम्बोधित किया, यह सोचकर कि उसके मुलायम पत्ते कुछ तो धूप दे ही देंगे, "ए अंगूर की खूबसूरत बेल! मुझे धूप की बहुत ज़रूरत है। अपने पत्तों से छनकर कुछ धूप मुझ तक भी आने दो।"

"तुम तो एकदम बेवकूफ हो," अंगूर की बेल ने इतराकर कहा, "भला अपने हिस्से की धूप मैं क्यों दूँ?"

नन्हे पौधे ने मायूस होकर छोटे-बड़े हर पौधे से, अमरूद और आम से भी धूप न मिलने की शिकायत की पर सबका जवाब एक ही था, "भला हम अपनी धूप तुम्हें क्यों दें?"

"कितने बेरहम हैं सब। काश! कोई समझ पाता कि धूप मेरे लिए कितनी ज़रूरी है," नन्हे पौधे ने दुखी होकर सोचा।

"मेरे विचार से यों गिड़गिड़ाने से कुछ नहीं होगा," क्यारी की गीली मिट्टी में पनपती मनीप्लांट की बेल ने नन्हे पौधे से कहा, "वैसे भी माँगने पर तो आसानी से कुछ नहीं मिलता, धूप तो बिलकुल नहीं।"

"ओह... तब तो सचमुच यह गलत जगह है मेरे लिए।"

"अब यह सब सोचने का कोई मतलब नहीं है... हाँ, एक तरीका है..."

"वो क्या?" नन्हे पौधे ने मनीप्लांट को अपनी बात पूरी करने को कहा।

"तुम खुद धूप हासिल करो... सबसे ऊपर उठने की कोशिश करो..."

कुछ मुश्किल होने के बावजूद नन्हे पौधे को यह सुझाव अच्छा लगा। उसने धूप की सुनहरी कल्पनाएँ करते हुए बढ़ना शुरू किया। जल्दी ही उसके पत्ते बड़े होने लगे। तीसरे दिन तो वो नींबू के तने को छूने की सोचने लगे और हफ्ते भर में वे नींबू की निचली टहनियों तक पहुँच गए।

"मेरी टहनियों को छूने से पहले जान लो नन्हे पौधे कि मेरे काँटे तुम्हें नुकसान पहुँचा सकते हैं। बाद में मुझे दोष मत देना," नींबू के पेड़ ने नन्हे पौधे को सावधान करते हुए कहा। पर वास्तव में उसे नन्हे पौधे का बढ़ना अच्छा नहीं लग रहा था।

नन्हा पौधा नींबू के तेवर देखकर समझ गया कि नींबू का पेड़ उसे रास्ता नहीं देगा। इसलिए उसने अपने तने को तिरछा किया, पत्तों को ज़रा झुकाया जैसे लोग बहुत नीचे दरवाज़े में से निकलने के लिए करते हैं, और फिर ज़रा खुली जगह पाकर बढ़ने लगा। उसे बार-बार लगता था कि धूप उसे बुला रही है और उसे जाना ही है। अब उसके पत्ते कुछ और बड़े और खूबसूरत हो गए थे और अंगूर की बेल के ऊपर फैल गए थे, किसी पक्षी के बड़े-बड़े डैनों की तरह।

"यह पपीते का पौधा तो अंगूर की बेल को पनपने ही नहीं देगा," यह कहते हुए किसी ने उसके तीन पत्ते डण्ठल सहित उखाड़ डाले।

"मेरी परवाह किसी को नहीं है," नन्हे पौधे ने सोचा। पर उसने खुद को समझा भी लिया, "अच्छा है, इससे तो बढ़ने में ज़्यादा आसानी होगी।"

और इस तरह पपीते का पौधा, जिसे अब नन्हा कहना तो नासमझी होगी, हर रुकावट को पार करता, क्यारी के पेड़-पौधों को पीछे छोड़ता बढ़ता रहा। क्यारी के पेड़-पौधों में उसके बारे में चर्चाएँ होती रहतीं कि "आज उसके दो और नए पत्ते निकल आए, कि अब उसने नींबू को पूरी तरह ढँक लिया, कि अब तो वह आम को छूने की कोशिश कर रहा है, कि अरे अब तो वह सबसे ऊँचा हो गया... उसके पत्ते कितने बड़े हैं, बिलकुल छतरी जैसे...।"

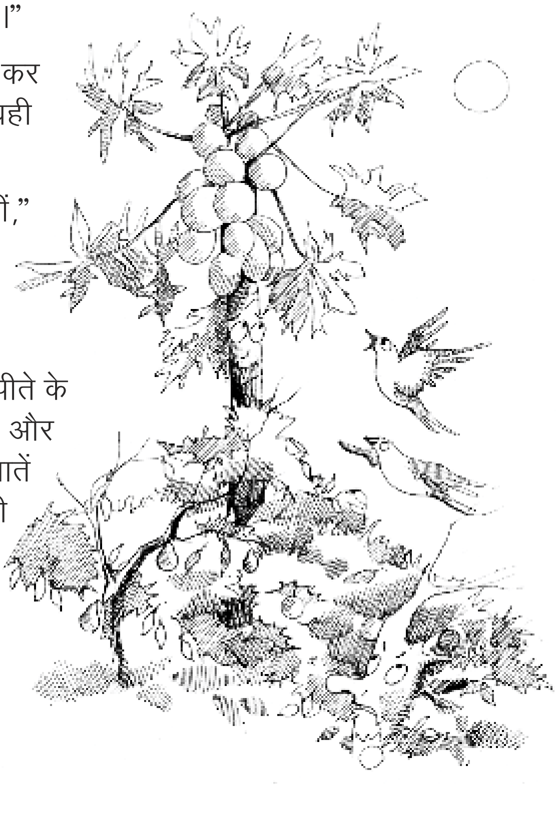

"इस पेड़ ने तो सचमुच कमाल कर दिया," चिड़ियाएँ भी चहचहाती हुई यही कह रही थीं।

"इसमें ताज्जुब की कोई बात नहीं," मनीप्लांट ने कहा। "मुझे तो यकीन था, क्योंकि वह धूप के लिए इतना उत्सुक जो था।"

लेकिन मनीप्लांट की यह बात पपीते के तने तक ही पहुँच सकी। उसके बड़े और खूबसूरत पत्ते तो इतने ऊँचे, धूप से बातें कर रहे थे कि उन तक मनीप्लांट की बात पहुँच ही नहीं सकती थी।